Shodh International: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Vol. 1, Issue 1 - 2016

प्राचीन भारतीय इतिहास में लोकनाट्य परम्परा के विकास का अध्ययन

डॉ. पूरण मल मीणा*

शोध सारांश

लोकनाट्य परम्परा प्रस्तुति कलाओं में सर्वोत्तम है, इसमें मानव और पर्यावरण की व्याख्या आलबंन उद्दीपन के रूप में की जाती है। भारत में लोकनाट्य परम्परा का विकास लोगों के मनोरंजन और सामुहिक अभिनय के रूप में हुआ है। भारत में लोकनाट्क रास, स्वांग, नोटंकी, प्रहसन के रूप में दिखाई देते है। ऐतिहासिक रूप में लोकनाट्य के बीज वेदों के संवाद–सूक्तों में और वेदों के उपरान्त वृहदारण्यकोपनिषद्, पाणिनि अष्टाध्यायी में नाट्य सूत्र रूप में मिलते है। मौर्य काल में यूनानी प्रभाव से रंगमंच का विकास हुआ। पातंजलि के समय नाटकों का प्रदर्शन होने लगा। बौद्ध साहित्य में इन्हें प्रेक्षा कहा गया। बौद्ध विद्वान अश्वघोष ने प्रथम द्वितीय सदी में नाट्यसूत्र नियम आधारित नाटक लिखें। 300–700 ई. काल में शास्त्रीय संस्कृत नाटक व रंगमंच की उत्पत्ति और विकास हुआ। इसी काल में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की रचना हुई। आठवीं–नवीं सदी बाद में शास्त्रीय नाटकों का पतन आरम्भ हो गया, लेकिन लोकनाट्य परम्परा वल्लभाचार्य और रामानन्दाचार्य के प्रयासों से रासलीला व रामलीला के रूप में सम्पूर्ण भारत में पल्लवित व प्रसारित हुई। आधुनिक युग में ये लोकनाट्य परम्परा धार्मिक लोकनाट्यों जात्रा, कीर्तन, रामलीला, ललित, यक्ष गान रूप में विकसित हुई। वर्तमान युग में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव टेलीविजन प्रदूषण संस्कृति के कारण पतन की ओर जा रही है।

संकेताक्षरः लोक, लोकनाट्य, नाट्य शास्त्र, प्रस्तुतिकला, रंगमंच।

प्रस्तावना

लोक नाटक, जीवन की तरह विशाल कला है, जिसमें जीवन के सभी रंगों व रसों का मेल है। सभी प्रस्तुति कलाओं में यह सर्वोत्तम है, क्योंकि इसमें नृत्य, गायन तथा वादन को एक साथ प्रस्तुत किया जाता है। नाटक का प्रत्येक अंक मानव जीवन की कहानी कहता है। नाटक संपूर्ण ब्रह्माण्ड की सभी संवेदनाओं, संसार के सभी सात भौगोलिक विभेदों तथा लोगों के व्यवहारों एवं क्रियाओं की अनुकृति (Imitation) है।

*व्याख्याता इतिहास, राजकीय स्नातकोतर महाविद्यालय, सुजानगढ (राजस्थान)

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved. **ISSN: 2581-3501**

जब लोगों के स्वभावों को सुख–दुःख के साथ भौतिक माध्यम जैसे अभिनय के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तो इसे नाटक कहते हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार संपूर्ण ब्रह्माण्ड नाटक का विषय (theme) है। संपूर्ण संसार दो वस्तुओं से बना है– मानव व उसका पर्यावरण। मानव को आलंबन तथा पर्यावरण को उद्दीपन कहा गया है। इस तरह नाटक मानव प्रकृति तथा चरित्र का परिणाम है। इस प्रकार सामान्य शब्दों में नाटक मानव जीवन की एक अनुकृति है।[1]

''भरत मुनि के नाट्यशास्त्र से यह तो सुविदित ही है कि हमारे देश की नाट्य–कला कितनी प्राचीन और समृद्ध रही है। लोकधर्मी नाट्य–परम्परा का इतिहास इससे भी बहुत पहले का हैं। विविध उत्सवों, अनुष्ठानों, मेलों, ठेलों, वार–त्यौहारों तथा धार्मिक संस्कारों पर लोक–जीवन अपने बहुरंगे उल्लास में उमड़ पड़ता है और नृत्य की अदायगियों एवं संगीत की स्वर–लहरियों के भाव–विहल हो, अपने समग्र जीवन की सुखान्त शाश्वतता को साकार हुआ देखता है। धीरे–धीरे ज्यों–ज्यों सभ्यता का विकास हुआ और मनोविनोद के ये साधन स्थायित्व ग्रहण करने लगे तो विविध भाव–भंगिमाओं ने इन्हें एक नयी भूमिका दी जो आगे जाकर लोकनाट्य के रूप में विकसित हुई।[2]

लोक नाट्य शब्द शब्दकोष के आधार पर लोक और नाट्य दो शब्दों से बना है। लोक शब्द का अर्थ भौतिक जगत या बहुत से व्यक्तियों का समूह या मानव क्रिया कलापों से सम्बन्धित संसार है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार लोक एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ होता है संसार। लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीय और पांडित्य चेतन अहंकार से शून्य है जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।[3]

उसी लोक समूह की कृति जब नाट्य रूप में कथोपकथनों के माध्यम से किसी कथावृत को उपस्थित करती है तो वह लोक नाट्य कहलाता है। इस कथोपकथन के माध्यम से इस विद्या के स्वरूप को संवारने के लिये नृत्य, अभिनय, संगीत व वेशभूषा आदि का योगदान रहता है।

लोक नाटकों की उत्पत्ति का इतिहास वैदिक काल से ही माना जाता है। भारत में नाटकों के संबंध में जो कथा कही गयी है उससे ज्ञात होता है कि इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने ब्रह्मा से मनोविनोद का ऐसा साधन उत्पन्न करने की प्रार्थना की जो श्रव्य और दृश्य हो और जिसमें सभी वर्गों के व्यक्तियों का मनोरंजन हो सके। चारों वेदों का पठन–पाठन शूद्रों के लिये निषिद्ध था अतः पंचमवेद की आवश्यकता हुई। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर 'नाट्यवेद' की रचना की। इस प्रकार नाट्क समस्त व्यक्तियों के अनुरंजन का साधन हुआ।[4]

इस प्रकार हम कह सकते है कि वेदों में नाटकीय तत्वों के बीज प्राप्त होते है। ऋग्वेद में प्राप्त संवादात्मक ऋचाएँ नाटकीय संवादों का मूल रूप है। गीत, नृत्य और अभिनय के तत्व वेदों में प्राप्त होते हैं उन्हीं के योग से नाटक का जन्म हुआ होगा। ''वेदों के संवाद–सूक्तों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सामे–विक्रय के समय लोगों के मनोरंजन के लिये एक प्रकार का अभिनय

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501

किया गया था। सोम–क्रयण का प्रसंग भी नाटकीयता से रहित नहीं था।

वेदों के उपरान्त बृहदारण्यकोपनिषद् के याज्ञ–वल्क्य–मैत्रैयी संवाद अथवा गार्ग्य, अज्ञात शत्रु संवाद में भी नाटकीय तत्व उपलब्ध है। रामायण और महाभारत में भी नाटकों की सूचना मिलती है। रामायण में नट, नर्तक आदि का उल्लेख अनेक प्रसंगों में हुआ है। वैयाकरण पाणिनि ने ''अष्टाध्यायी में शिलालि तथा कृशाश्व द्वारा प्रणीत नाट्य–सूत्रों का उल्लेख किया है, इससे मालूम पड़ता है कि उस समय भी नाटक का प्रचलन था।[5]

मौर्य काल में यूनानी लेखकों ने ही सर्वप्रथम इस मान्यता की नींव रखी कि भारत में रंगमंच का विकास यूनानी प्रभाव में हुआ। मेगास्थनिज जो चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में 302–288 ई.पू. के बीच भारत आया, लिखता है कि रंगमंच के देवता डायोनाईसस (Dionysus) ने ही प्रस्तुति कला के विज्ञान को भारत पहुँचाया। इस मिथक की अनेक यूनानी लेखकों की रचनाओं में पुनरावृति होती है। 326 ई.पू. सिकंदर महान के शिविर में झेलम नदी के तट पर प्रथम बार एगेन (Agan) नामक एक व्यंग नाटक का मंचन होता है, शायद भारत की धरती पर मंचित यह प्रथम यूनानी नाटक था। रंगमंच यूनानी सैन्य शिविर परंपरा में एक प्रमुख मरोरंजन का साधन था। यूनानी नियंत्रित भारतीय क्षेत्रों में भी इसी तरह के अनेक रंगमंच की प्रस्तुति का उल्लेख हमें अनेक संदर्भों से प्राप्त होता है।[6]

पातंजलि ने अपने महाभास्य में 'कंसवध' और 'बलिवध' नामक नाटकों का उल्लेख किया है। वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में नटों द्वारा अभिनीत नाटकों के प्रदर्शन का उल्लेख किया है। अनेक बौद्ध ग्रन्थों में भिक्षुओं के लिये नाटक देखना वर्जित माना गया है।

बौद्ध साहित्यों में आख्यान तथा प्रेक्षा, दो प्रकार के साहित्य मिलते हैं, जहाँ प्रेक्षा का सीधा मतलब नाटक से है, यद्यपि प्रेक्षा का जन्म आख्यान प्रकार के साहित्यों से हुआ। बौद्ध संस्कृत नाटक में अश्वघोष का नाम काफी प्रतिष्ठित है। अश्वघोष एक महान बौद्ध विद्वान, कवि एवं नाटककार थे जिनका संबंध प्रथम–द्वितीय सदी से माना जाता है। अश्वघोष के नाटक शास्त्रीय नाटकों के काफी करीब थे और नाट्यसूत्र के नियमों पर आधारित थे। बौद्ध विषयों पर नाटक लिखने की शुरूआत अश्वघोष द्वारा की गई। भरत अपने नाट्यशास्त्र में कई बौद्ध चरित्रों का वर्णन करते हैं। इसके अलावा कई नाटकों में भी बौद्ध उपासकों का वर्णन मिलता है।[7]

300 से 700 ई. का काल भारतीय रंगमंच के लिए काफी महत्वपूर्ण था। इसी दौरान शास्त्रीय संस्कृत नाटक तथा रंगमंच की उत्पत्ति और विकास हुआ। नाटक के आधार ग्रंथ नाट्यशास्त्र को कई विद्वान इसी काल की रचना मानते है। कालिदास एक असाधारण नाटककार थे। इनके अभिज्ञान शाकुंतलम् को संस्कृत नाटक की सर्वोत्तम कृ ति माना जाता है। कालिदास के बाद संस्कृ त में नाटक रचना का विस्फोट हुआ। नाटक मुख्य रूप से रूमानी व सुखांत बना रहा, दुखांत विषयों को दूर रखा गया, क्योंकि रंगमंच का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था। शूद्रक–कृत मृच्छकटिकम् में शहरी जीवन की झांकी मिलती है। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501

तथा देवीचन्द्रगुप्तम राजनीतिक विषय से प्रेरित नाटक हैं।[8]

मुस्लिम विजय के पहले से ही साहित्य एवं नाट्क विधाओं का ह्रास शुरू हो चुका था। आठवीं और नवीं शताब्दी ई. के बहुत कम नाटकों की जानकारी हमें प्राप्त है। आठवीं सदी के बाद से ही नाटकों का मंचन काफी कम हो गया था परंतु परंपरागत लोक नाटक परंपरा अबाध्य रूप से जारी रही। राजनीतिक अस्थिरता के कारण राजकीय एवं अभिजात्य प्रश्रय मिलना बंद हो गया। मुरारी तथा राजशेखर के रूपकों में वास्तविक नाट्य गुणों के ह्रास होने की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ए.बी. कीथ ने नाटक की अवनति के लिए कई कारकों को जिम्मेदार माना है। रूपक के यथार्थ स्वरूप का असाधारण रूप से नगण्य ज्ञान इसका मुख्य कारण था। दूसरा प्रमुख कारण भारत में इस्लाम का आगमन था। प्रारंभ में इसका तात्कालिक प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु मुस्लिम शक्ति के प्रसार से वातावरण नाटकों की रचना और अभिनय के अनुकूल नहीं रहा। एक अन्य कारण में कीथ महोदय का यह कहना है कि नाटक की भाषाओं और यथार्थ की भाषाओं का अंतर बढ़ता जा रहा था। स्पष्ट है कि 400 ई. की अपेक्षा 1000 ई. में संस्कृत और प्राकृत में रचना बिल्कुल भिन्न वस्तु थी, जबकि जनपदीय भाषाएं साहित्यिक रूप प्राप्त करने लगी थीं।[9]

मुसलमान शासकों के समय नाटक की धारा कुछ क्षीण अवश्य हो गई। परन्तु बल्लभाचार्य, रामानन्दाचार्य आदि के प्रयास से पुनः कृष्ण तथा राम विषयक रासलीला एवं रामलीला नाटकों का प्रचार जोर–शोर से होने लगा। सूर, तुलसी, महात्रभु चैतन्य इनके प्रयासों से सम्पूर्ण देश में विभिन्न रूपों में ये लोकनाट्य अपना मार्ग प्रशस्त करने लगे।[10]

निष्कर्ष

प्राचीन भारत के अनेक अवसरों जैसे– विवाह, यात्रा, अभिषेक नगर या गृह प्रवेश, पुत्र जन्म तथा विशेष उत्सवों पर लोक नाटक आयोजित किए जाने की परंपरा थी। अभिजात वर्ग के नाटक राजमहलों तथा मंदिर प्रागंण में होते थें, जबकि जनसाधारण के खुले प्रागंण में। धर्म तथा इतिहासकाल में उपलब्ध संकेतों से नाटकों का निर्माण किया गया। इतिहास काव्य पर अतिशय निर्भरता के कारण भी नाटक की क्षति हुई, कवि यह समझने में असमर्थ रहे कि इतिहास काव्य के अधिकतर विषय कुल मिलाकर अनाटकीय थें। ब्राह्मण आदर्शों के कारण भी इसे नुकसान उठाना पड़ा, क्योंकि ब्राह्मण आदर्श में व्यक्तित्व का कोई महत्त्व नहीं है। इस कारण संस्कृत नाटक केवल प्रकारात्मक पात्रों की ओर ही ध्यान देता रहा, व्यक्ति वैचित्र्य की ओर नहीं, लेकिन लोकनाट्य कला रासलीला, रामलीला, जात्रा (पश्चिम बंगाल), माच (मालवा), नौटंकी (पश्चिमी उत्तरप्रदेश), खयाल (राजस्थान), बिदेशिया (बिहार), तमाशा, ललित, गोधल (महाराष्ट्र), यक्षगान (दक्षिण भारत), इसे तमिल, तैलगूं, कन्नड़ में विथि नाट्कम् भी कहते हैं। इन सभी लोकनाट्य कलाओं का विकास मध्यकाल में हुआ, जो आज प्रमुख लोकनाट्य परम्परा है। इस प्रकार हम कह सकते है कि लोकनाट्य कला प्राचीन काल में उदित हुई। मध्य काल में पल्लवित हुई तथा आधुनिक युग में विकसित हुई। आज समकालीन युग में प्रौढता और पतन की ओर जा रही है।

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ठाकरान आर.सी.; शिवदत्त, संजय कुमार, भारतीय उपमहाद्वीप की संस्कृतियाँ (भाग–1) (दिल्ली विश्वविद्यालय के लिए संपादक), हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 2013.
2. डॉ. परमार श्याम, लोकधर्मी नाट्य परंपरा।
3. डॉ. सत्येन्द्र; लोक साहित्य विज्ञान, पृष्ठ–3.
4. भरतमुनि; नाट्य शास्त्र : पेज 17–18.
5. आचार्य बलदेव उपाध्याय वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी।
6. वरदपांडे एस.एल., हिस्ट्री ऑफ इंडियन थियेटर, कलासिकल थियेटर, अभिनव पब्लिकेशन, दिल्ली, 2005.
7. तिवारी देव, एवं खन्ना, भारतीय साहित्य एवं परिचय (दिल्ली विश्वविद्यालय के लिए संपादक), पियर्सन, दिल्ली 2005.
8. कुलकर्णी आर.पी.; दि थिएटर अकॉर्डिंग टू द नाट्यशास्त्र ऑफ भरत, कृष्णा पब्लिकेशन, दिल्ली–1994.
9. कीथ ए.बी. (अनुवाद डॉ. उदय भानूसिंह), संस्कृत नाटक, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1971.
10. मधुर शिवकुमार, भारत के लोक नाट्य वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1980.

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501